रघुबंस दूबे

बनाम

बिहार राज्य

19 मई, 1967

[न्यायमूर्तिगण एम 0 हिदायुल्लाह एस 0 एम 0 सिकरी और सी0 ए 0 वैद्यलिंगम]

दंड प्रक्रिया संहिता (1898 के अधिनियम 5), धारा–190(1)(बी) और 207–

मजिस्ट्रेट द्वारा पुलिस प्रपत्रों पर अपराध का संज्ञान लेना–पुलिस द्वारा नहीं भेजे गए आरोपियों के खिलाफ कार्यवाही का क्षेत्राधिकार

अभियुक्त का उन्मोचन–क्या संभव है, जब आरोपियों को आरोप पत्र में शामिल नहीं किया गया है।

पुलिस द्वारा अपीलाकर्ता एवं अन्य के विरूद्ध की गयी शिकायत की जांच किया गया, अपीलार्थी की अन्यत्र रहने की दलील स्वीकार की तथा उपजिलाधिकारी के समक्ष अन्य अपराधियों के विरूद्ध आरोप पत्र अन्तर्गत धारा–302, 201, 149 भा०द०स० में दाखिल किया गया। मजिस्ट्रेट द्वारा व्यक्त किया गया कि अपीलार्थी उन्मोचित कर दिया गया है और मामले को जांच के लिए किसी अन्य मजिस्ट्रेट को स्थानांतरित कर दिया गया है। अपीलार्थी के विरूद्ध गैर जमानतीय अधिपत्र जारी किये जाने का आदेश दो गवाहों के परीक्षण के उपरान्त पारित किया गया है तथा अन्य अभियुक्तगण के विरूद्ध धारा–207 ए द०प्र०स० की कार्यवाही की गयी है। माननीय सत्र न्यायालय व उच्च न्यायालय द्वारा उक्त आदेश की पुष्टि की गयी।

इस न्यायालय में अपील संस्थित की गयी।

यह माना गया (1) अपीलार्थी को उन्मोचित नहीं किया जा सकता, जब तक उसे पुलिस द्वारा दाखिल आरोप पत्र में आरोपी के रूप में शामिल न किया गया हो। (426 सी.)

(2) अपीलार्थी व अन्य अभियुक्तगण के विरूद्ध धारा–207 ए द०प्र०सं० के अन्तर्गत कार्यवाही की जा सकती है।

उपजिलाधिकारी द्वारा पुलिस की लिखित आख्या पर धारा–190(1)(बी)द०प्र०स० के अन्तर्गत अपराध का प्रसंज्ञान लिया जा चुका था। जिस कारण कार्यवाही धारा–207 ए द०प्र०स० के अन्तर्गत अग्रसारित की गयी, न की धारा–207(बी)द०प्र०स०। हालांकि यह केवल अपराध का संज्ञान था, न की उक्त अपराध के अपराधी का। अपराध का प्रसंज्ञान लेने के उपरान्त उपजिलाधिकारी के यह आवश्यक था कि यह पता लगाया जाए कि वास्तविक अपराधी कौन है, तथा यदि वह इस निष्कर्ष पर पहुँचेंते है कि पुलिस द्वारा प्रस्तुत किये गये व्यक्तियों के अतिरिक्त अन्य लोग भी उक्त प्रकरण में संलिप्त है, तो ऐसी स्थिति में यह उपजिलाधिकारी का कर्तव्य होगा कि वह उन अन्य लोगों के विरूद्ध भी कार्यवाही अग्रसारित करे। अपीलार्थी की तलबी अतिरिक्त अभियुक्त के रूप में पूर्व में कारित अपराध के विरूद्ध प्रसंज्ञान की कार्यवाही प्रारम्भ की गयी। [427 बी–सी.428 सी–डी]

प्रवीण चन्द्र मोदी बनाम आंध्र प्रदेश राज्य (1965) 1 एस.सी.आर. स्वीकृत।

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकार : आपराधिक अपील संख्या –189/1964

यह अपील आपराधिक निगरानी संख्या–896/1961 में माननीय उच्च न्यायालय पटना के निर्णय और आदेश 10 अप्रैल, 1964 से विशेष अनुमति प्रदान किये जाने हेतु प्रस्तुत।

अपीलार्थी.....डेनियल लतीफी और के०के० सिन्हा।

प्रत्यार्थीगण.....आर.एन. सचथे।

न्यायालय द्वारा सुनाया गया फैसला।

न्यायमूर्ति सिकरी. यह अपील अपीलकर्ता रघुबंस दूबे द्वारा माननीय उच्च न्यायालय द्वारा पारित आपराधिक पुनरीक्षण संख्या–896/1961 में दिये गये आदेश के विरूद्ध दाखिल की गयी है। अपीलकर्ता द्वारा अपील में न्यायालय के समक्ष उठाये गये बिन्दुओं की विश्लेषण करने के लिए प्रासंगिक तथ्य इस प्रकार हैंः–

अपीलाकर्ता 29 जुलाई 1959 को राजा राम साह द्वारा दर्ज करायी गयी प्रथम सूचना रिपोर्ट में हमलावारों के रूप में उल्लिखित 15 व्यक्तियों में एक था। पुलिस द्वारा मामले की जांच की गयी तथा दौरान प्रकरण की जांच अपीलार्थी ने अन्यत्र स्थान पर रहने की दलील प्रस्तुत की, जिसको पुलिस द्वारा स्वीकार कर लिया गया तथा धारा–173 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत अंतिम रिपोर्ट में अभियुक्त के रूप में अपीलकर्ता नाम शामिल नहीं किया गया तथा आरोप पत्र के स्तम्भ संख्या–2 में, जो "भेजे नहीं गये" शीर्षक के मद में उल्लिखित कर दिनांक 05 अप्रैल, 1961 को उप जिलाधिकारी द्वारा निम्नलिखित आदेश पारित कर दिया गयाः–

अभियुक्तगण के विरूद्ध, आरोप पत्र संख्या–12 दिनांकित 23.03.1961, अन्तर्गत धारा–149, 302, 201 भा०द०स० जिसमें उनके नाम का उल्लेख स्तम्भ संख्या 3 व 4 में किया गया है, प्राप्त हुआ।

धारा–149, 302, 201 भारतीय दण्ड संहिता के अन्तर्गत संज्ञान लिया गया और मामले को दण्ड प्रक्रिया संहिता के अध्याय XVIII के अन्तर्गत जांच के लिए श्री एल.पी. सिंह मैजिस्ट्रेट को स्थानांतरित कर दिया गया। अभियुक्त को परीक्षण के लिए भेजे बिना ही दोषमुक्त किया गया।

स्थानान्तरण पर, मजिस्ट्रेट श्री एल.पी. सिंह द्वारा 02 मई, 1961 मामले के स्थानान्तरण उपरान्त सुनवाई शुरू की गयी। इसी दौरान 11 अप्रैल, 1961 को एक याचिका दायर की गयी, जिसमें प्रार्थना की गयी कि अपीलकर्ता को मजिस्ट्रेट द्वारा बुलाया जाए। दिनांक 02 मई 1961 को साक्षी जगन्नाथ साव पी०डब्लू०–1 को परीक्षित कराया गया तथा मुख्य परीक्षा में उसके द्वारा अपीलकर्ता को फसाते हुए उस भीड़ में मौजूद लोगों में से एक बताया, जिस पर रूपन सिंह की हत्या करने का आरोप है। इसी प्रकार से उसी दिन साक्षी महेश साव पी०डब्लू०–2 द्वारा भी अपनी मुख्य परीक्षा में अपीलकर्ता को फसाया गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराने वाले व्यक्ति राजा राम साह के अधिवक्ता ने न्यायालय से अनुरोध किया गया था कि अपीलकर्ता को भी सुनवाई के लिए बुलाया जाए, जैसा कि दिनांक 11 अप्रैल, 1961 की याचिका में प्रार्थना की गयी थी। मजिस्ट्रेट ने सहायक जिला अभियोजक व अभियुक्त के विद्वान अधिवक्ता को सुनने के बाद निम्नलिखित आदेश पारित कियाः–

"रघुबंस प्रथम सूचना रिपोर्ट में नामित है तथा जैसा कि सहायक जिला अभियोजक द्वारा प्रस्तुत 5 गवाहों ने पुलिस के सामने उसका नाम लिया है और मेरे समक्ष परीक्षित पी०डब्लू०–1 ने भी उसका नाम लिया है। इसलिए मेरी राय में इस जांच में अभियुक्त के रूप में रघुबंस दूबे का नाम जोड़ना उचित होगा। इस स्तर पर अभियुक्त के अधिवक्ता द्वारा एक याचिका दायर की गयी है, जिसमें कथन किया गया कि रघुबंश की उपस्थिति उपरान्त परीक्षित गवाहों से प्रतिपरीक्षा करने की अनुमति दी जाए, अन्यथा यह तर्क उचित है कि रघुबंश की उपस्थिति के बाद फिर से जिरह करनी होगी तथा इसलिए बचाव पक्ष की ओऱ से प्रार्थना की अनुमति दी जाती है। पी०डब्लू०–2 का परीक्षण किया गया तथा मुख्य परीक्षा में उसके द्वारा रघुवंश को घटना के समय अभियुक्तगण की भीड़ में शामिल होना बताया गया है। रघुवंश दूबे के विरूद्ध गंभीर आरोप अभियोजन महेश साह द्वारा आज प्रस्तुत किये गये हैं, जिस कारण अभियुक्त रघुवंश दूबे के विरूद्ध गैर जमानतीय अधिपत्र जारी किया गया है। उक्त आदेशिका विशेष वाहक द्वारा दिनांक 03.06.1961 तक वापस प्राप्ति हेतु जारी हो। अन्य आरोपी पुनः हाजिर होंगे। "

अपीलकर्ता ने इस आदेश को सत्र न्यायाधीश के समक्ष चुनौती दी। उनके समक्ष यह याचित किया गया कि मजिस्ट्रेट के पास अपीलकर्ता को बुलाने का कोई अधिकारी नहीं है, क्योंकि उपजिलाधिकारी ने पहले ही गुण दोष के आधार पर एक अभ्यापत्ति याचिका खारिज की दी थी। सत्र न्यायाधीश ने इस तर्क को खारिज कर दिया और कहा कि यह मजिस्ट्रेट का क्षेत्राधिकार है कि वह किसी भी व्यक्ति को बुला सकता है, जिसके खिलाफ उसे मामले में पर्याप्त साक्ष्य मिले हों।

इसके पश्चात् अपीलकर्ता द्वारा माननीय उच्च न्यायालय के समक्ष आपराधिक पुनरीक्षण दायर किया गया था। सबसे पहले उच्च न्यायालय के समक्ष यह निवेदन किया गया कि दिनांक 11 अप्रैल, 1961 की याचिका एक शिकायत याचिका थी और शिकायत याचिका के आधार पर अपीलकर्ता को बुलाने से एक अलग शिकायत मामला बन जाएगा तथा उस पर धारा–207 ए दण्ड प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत अन्य आरोपियों के साथ मुकदमा नहीं चलाया जा सकता। द्वितीय तर्क इस प्रकार प्रस्तुत किया गया कि मजिस्ट्रेट का आदेश अनियमित था, क्योंकि उसने अपीलकर्ता को उन्हीं आधारों पर बुलाया था, जिस पर उपजिलाधिकारी ने उसे आरोप मुक्त कर दिया था। पहले बिंदु पर उच्च न्यायालय ने माना कि मजिस्ट्रेट के आदेश के परिणामस्वरूप अपीलकर्ता के खिलाफ एक अलग शिकायत का मामला नहीं बनता है, क्योंकि "वर्तमान मामला तब संस्थित किया गया था जब उपजिलाधिकारी ने पुलिस द्वारा रिपोर्ट किए गए अपराध का संज्ञान लिया था, तथा मामला पुलिस रिपोर्ट से शुरू हुआ माना जाएगा।" इसलिए दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 190 की भाषा से यह स्पष्ट है कि मजिस्ट्रेट पुलिस रिपोर्ट या परिवाद की याचिका में किए गए अपराध का संज्ञान लेता है तथा वहां, उस स्तर पर अपराधियों का संज्ञान लेने जैसा कुछ नहीं है।" अभिलेखों पर मौजूद समस्त प्रपत्रों के आधार पर अपराध का संज्ञान लेने के बाद यह तय किया जाना चाहिए कि वास्तव में अपराधी कौन हो सकते हैं। इसलिए, वर्तमान मामले के तथ्यों व पुलिस रिपोर्ट पर अपराध का संज्ञान लिया जाता है तथा स्थानांतरित मजिस्ट्रेट द्वारा रघुबंस दुबे को तलब करने का आदेश किसी अपराध का संज्ञान लेने के समान नहीं है।" दूसरे बिंदु पर उच्च न्यायालय ने माना कि मजिस्ट्रेट ने अपीलकर्ता को केवल उन आधारों पर नहीं बुलाया, जो उपजिलाधिकारी के समक्ष थे क्योंकि दोनों मजिस्ट्रेटों के समक्ष प्रपत्र समान नहीं थे। उपजिलाधिकारी ने अकेले पुलिस रिपोर्ट के आधार कार्रवाई की थी, लेकिन मजिस्ट्रेट ने अदालत में जांचे गए अभियोजन पक्ष के दो गवाहों के साक्ष्य को भी ध्यान में रखा।

अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री डेनियल लतीफी द्वारा हमारे समक्ष दो तर्क प्रस्तुत किये गये है, पहला यह कि उपजिलाधिकारी द्वारा दिनांक 5 अप्रैल, 1961 को अपीलकर्ता के उन्मोचन को अंतिम माना गया था तथा दूसरा यह कि इस मामले के तथ्यों के संदर्भ में अपनाई गयी प्रक्रिया को धारा 207 ए के अन्तर्गत नहीं किया जाना चाहिए था, बल्कि अध्याय XVIII दण्ड प्रक्रिया संहिता में उक्त धारा के उपरान्त उल्लिखित धाराओं के आधार पर प्रक्रिया अपनाई जानी चाहिए थी। अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत उक्त दोनों तर्कों के बिन्दुओं में कोई बल प्रतीत नहीं होता है।

पहले बिन्दु के संदर्भ श्री लतीफी द्वारा अपना मत व्यक्त किया गया है कि समन भेजने से न्यायिक इन्कार करने को उन्मोचन माना जाना चाहिए। इस तर्क में कोई बल प्रतीत नहीं होता है, क्योंकि जब पुलिस द्वारा प्रस्तुत आरोप पत्र पर अपीलकर्ता को भेजा ही नहीं गया तो उन्मोचन करने का कोई सवाल ही नहीं उठता।

दूसरे बिंदु पर अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा तर्क प्रस्तुत किया गया है कि संहिता की धारा–207 के अन्तर्गत पुलिस रिपोर्ट पर अपीलकर्ता के विरूद्ध कोई कार्यवाही शुरू नहीं की गयी थी, क्योंकि अपीलकर्ता का नाम आरोप पत्र में शामिल नहीं था। उनका कहना है कि भले ही धारा–190(1)(बी) द०प्र०स० के अन्तर्गत अपराध का संज्ञान लिया गया हो। इस स्तर पर अपीलकर्ता के विरूद्ध कोई कार्यवाही शुरू नहीं की गयी थी। कार्यवाही तब शुरू की गयी, जब अपीलकर्ता के विरूद्ध गैर जमानतीय अधिपत्र जारी किया गया था तथा यह कायवाही पुलिस रिपोर्ट के आधार पर नहीं, बल्कि मजिस्ट्रेट के समक्ष लिए गए साक्ष्य के आधार पर शुरू की गई थी और इसलिए, उनका कहना है, धारा–207(बी) के अन्तर्गत कार्यवाही की जानी चाहिए थी।

दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा–190(1) तथा 207 इस प्रकार है :–

"190(1) इसके बाद दिए गए प्रावधानों को छोड़कर, कोई भी प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट, जिला मजिस्ट्रेट या उप–विभागीय मजिस्ट्रेट, और इस संबंध में विशेष रूप से सशक्त कोई अन्य मजिस्ट्रेट, संज्ञान ले सकता है कोई भी अपराध–

(ए) उन तथ्यों की शिकायत प्राप्त होने पर जो ऐसे अपराध का गठन करते हैं;

(बी) किसी पुलिस अधिकारी द्वारा ऐसे तथ्यों की लिखित रिपोर्ट पर;

(सी) पुलिस–अधिकारी के अलावा किसी अन्य व्यक्ति से प्राप्त जानकारी पर, या अपने स्वयं के ज्ञान या संदेह पर, कि ऐसे अपराध में किया गया है।"

"207. मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रत्येक जांच में जहां मामला विशेष रूप से सत्र न्यायालय या उच्च न्यायालय द्वारा विचारणीय है, या, मजिस्ट्रेट की राय में, ऐसे न्यायालय द्वारा विचारणीय होना चाहिए, मजिस्ट्रेट–

(ए) पुलिस रिपोर्ट पर शुरू की गई किसी भी कार्यवाही में, धारा–207 ए में निर्दिष्ट प्रक्रिया का पालन करें। और

(बी) किसी भी अन्य कार्यवाही में, इस अध्याय के अन्य प्रावधानों में निर्दिष्ट प्रक्रिया का पालन करें।"

हमें ऐसा लगता है कि धारा–207 ए धारा 190(1)(बी) को संदर्भित करती है, दूसरे शब्दों में धारा–207 ए में उल्लिखित पुलिस रिपोर्ट धारा–190(1)(बी) में उल्लिखित रिपोर्ट है तथा धारा–190(1)(बी) के अन्तर्गत एक बार संज्ञान लेने के बाद धारा–207 ए के अन्तर्गत कार्यवाही शुरू की जाती है। न्यायमूर्ति हिदायतुल्लाह ने न्यायालय की ओर से तर्क प्रस्तुत करते हुए प्रवीण चन्द्र मोदी बनाम आंध्रे प्रदेश राज्य में दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा–251 ए की व्याख्या पर विचार करते हुए इस प्रकार कहा है कि–,

"हमारे निर्णयों में पुलिस रिपोर्ट का जो अर्थ बताया गया है वह सही नहीं है। दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा–190 के अन्तर्गत इस संदर्भ का वर्णीकरण है कि कौन–कौन व्यक्ति आपराधिक प्रक्रिया की शुरूआत कर सकते हैं। धारा–190(1)द०प्र०स० के तीन खण्डों के अन्तर्गत जिसका हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं, आपराधिक प्रक्रिया का प्रारम्भ (i) एक पुलिस अधिकारी द्वारा लिखित रूप में एक रिपोर्ट द्वारा शुरू किया जा सकता है, (ii) एक पुलिस अधिकारी के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति से प्राप्त जानकारी पर या मजिस्ट्रेट की अपनी जानकारी पर या संदेह तथा (iii) शिकायती तथ्यों के प्राप्त होने पर। यदि इस मामले में रिपोर्ट उपरोक्त (i) के अंतर्गत आती है, तो दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 251 ए के अन्तर्गत उल्लिखित प्रक्रिया का पालन किया जाना चाहिए। यदि यह (ii) या (iii) के तहत आता है तो दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा–252 का अनुपालन करना होगा। इसलिए हम यह जानना चाहते है कि क्या इस मामले में पुलिस अधिकारी की लिखित आख्या को 'तथ्यों की शिकायत' या पुलिस अधिकारी के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति से 'प्राप्त जानकारी' के रूप में वर्णित किया जा सकता है।' यह बिल्कुल स्पष्ट है कि बाद लिखा गया सही नहीं हो सकता, क्योंकि सूचना पुलिस अधिकारी की ओर से दी गयी है। इस संबंध में 'परिवाद' शब्द को दंड प्रक्रिया संहिता द्वारा परिभाषित किया गया है और इसका अर्थ है 'संहिता'के तहत कार्रवाई करने की दृष्टि से मजिस्ट्रेट के समक्ष मौखिक रूप से या लिखित रूप में लगाये गये आरोप, कि कोई व्यक्ति, चाहे वह ज्ञात हो या अज्ञात, ने अपराध किया है, लेकिन इसमें किसी पुलिस अधिकारी की आख्या शामिल नहीं है।' [धारा–4(1)(एच) देंखे।]

इसलिए, यह दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा–252 का अनुसरण करता है, केवल उन मामलों पर लागू हो सकती है जो पुलिस आख्या के अतिरिक्त अन्यथा संस्थित किए गए हैं, यानी उन शिकायतों पर जो किसी पुलिस अधिकारी की आख्या नहीं हैं या पुलिस अधिकारी के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों से प्राप्त जानकारी पर।

(1) [1965]1 एस.सी.आर 269।

इसी तरह धारा–207(बी) केवल तभी लागू हो सकती है जब मामला पुलिस रिपोर्ट के अतिरिक्त संस्थित किया गया हो। इस मामले के तथ्यों पर यह बिल्कुल स्पष्ट है कि मामला धारा 190(1)(ए) या धारा–190(1)(सी) के अंतर्गत नहीं आता है, क्योंकि उपजिलाधिकारी ने दिनांक 5 अप्रैल, 1961 को अपराध का संज्ञान लिया था। लेकिन, श्री लतीफ़ी कहते हैं, कि हालांकि यह सच है कि संज्ञान दिनांक 5 अप्रैल, 1961 को लिया गया था, लेकिन जहां तक अन्य अभियुक्तों का संबंध है, उनके विरूद्ध अपराध का संज्ञान लिया गया था, न कि अपीलकर्ता के विरूद्ध संज्ञान लिया गया था। जहां तक अपीलकर्ता का संबंध है, तथ्य इस प्रकार है कि अपीलकर्ता को सही या गलत तरीके से उन्मोचित कर दिया गया था। हमारी राय में एक बार मजिस्ट्रेट द्वारा संज्ञान ले लेने के उपरान्त वह किसी अपराध का संज्ञान लेता है, अपराधियों का नहीं; एक बार जब वह किसी अपराध का संज्ञान लेता है तो यह उसका कर्तव्य है कि वह यह पता लगाए कि अपराधी वास्तव में कौन हैं और एक बार जब वह इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि पुलिस द्वारा भेजे गए व्यक्तियों के अतिरिक्त 'कुछ अन्य व्यक्ति भी शामिल हैं, तो उन व्यक्ति के विरूद्ध कार्रवाई करना उसका कर्तव्य है। अतिरिक्त अभियुक्त को तलब करना, उसके द्वारा किसी अपराध का संज्ञान लेने से शुरू की गई कार्यवाही का हिस्सा है। जैसा कि प्रवीण चंद्र मोदी बनाम आंध्र प्रदेश राज्य (1) में इस न्यायालय ने बताया था, "परिवाद" शब्द में अज्ञात व्यक्तियों के खिलाफ लगाए गए आरोप शामिल होंगे। यदि कोई मजिस्ट्रेट धारा–190(1)(ए) के अन्तर्गत तथ्यों की शिकायत के आधार पर संज्ञान लेगा तथा कार्यवाही शुरू की जाएगी, भले ही अपराध करने वाले व्यक्ति उस समय ज्ञात नहीं थे। हमारे विचार में धारा–190(1)(बी) के अन्तर्गत भी यह स्थिति कायम है।

प्रत्यार्थी के विद्वान अधिवक्ता श्री सचथे द्वारा हमारे संज्ञान में कुछ तथ्य लाए हैं, जिनमें समान दृष्टिकोण अपनाया गया है। सैफर बनाम पश्चिम बंगाल राज्य ( ) में कलकत्ता उच्च न्यायालय सिंध की पूर्ण पीठ ने मेहराब बनाम सम्राट में न्यायिक आयुक्तों के निर्णय के बाद, माना कि जब एक मजिस्ट्रेट ' धारा–190(1)(बी) के तहत पुलिस रिपोर्ट पर अपराध का संज्ञान लेता है, न कि केवल आरोप पत्र में नामित विशेष व्यक्तियों का, और इसलिए, मजिस्ट्रेट अतिरिक्त अभियुक्तों को बुलाने का हकदार है, जिनके विरूद्ध यह मानता है कि पर्याप्त साक्ष्य थे। धारा–161 के तहत पुलिस द्वारा दर्ज किए गए बयानों के अवलोकन के बाद तथा अदालत में गवाहों के परीक्षण के बिना भी धारा–173 में उल्लिखित अन्य दस्तावेज़ भेजे जा सकते हैं।

जैसा कि माननीय उच्च न्यायालय पंजाब ने फत्ता बनाम राज्य(4) और माननीय उच्च न्यायालय इलाहबाद ने अली उल्लाह बनाम राज्य(5) में भी इसी तरह का विचार व्यक्त किया।

परिणामस्वरूप याचिका विफल हो जाती है तथा खारिज की जाती है।

वी.पी.एस याचिका खारिज.

(1) [1965] 1 एससीआर 269। (2) एआईआर 1962 कैल। 133.

(3) एआईआर 1924 सिंध 7 1.

(4) एआईआर 1964 पुन. 351.

(5) [1963] 1 करोड़। एलजे 66.

अनुवादकर्ता–

(अनुपम शौर्य)
मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट,
गोण्डा।